जनसत्ता

सूचना पर लगाम

मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों के खिलाफ मिलने वाली शिकायतों की जांच, कार्रवाई और निपटान के लिए केंद्र सरकार ने जो रास्ता अख्तियार किया है वह चौंकाने वाला है। हाल में सरकार ने इस दिशा में जो कदम बढ़ाया है वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि आरटीआइ यानी सूचना के अधिकार के लिए काम करने वालों सहित देश के किसी भी नागरिक को मांगी गई सूचना मुहैया कराने वाली इस संस्था पर सरकार अब लगाम कसना चाहती है। इसलिए अब मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों के खिलाफ मिलने वाली शिकायतों की जांच के लिए दो समितियां बनाने का प्रस्ताव केंद्रीय सूचना आयोग को भेजा गया है। इस प्रस्ताव के तहत यह व्यवस्था की गई है कि एक समिति मुख्य सूचना आयुक्त से जुड़ी शिकायतों को देखेगी और दूसरी सूचना आयुक्तों के खिलाफ मिली शिकायतों को। मुख्य सूचना आयुक्त के खिलाफ जांच के लिए जो समिति बनाने की बात है उसमें कैबिनेट सचिव, कार्मिक और प्रशिक्षण मंत्रालय के सचिव, एक पूर्व मुख्य सूचना आयुक्त शामिल होंगे। इसी तरह की सरकार के शीर्ष नौकरशाहों की दूसरी समिति सूचना आयुक्तों के खिलाफ शिकायतों के बारे में फैसले करेगी।

सरकार के इस कदम से आयोग खफा है। जाहिर है, ऐसा कोई भी कदम आयोग की स्वतंत्रता पर हमला होगा। दोनों ही समितियों का प्रारूप यह बताता है कि इस स्वतंत्र और निष्पक्ष संस्था पर सरकार हावी होने की तैयारी में है। अभी तक व्यवस्था यह है कि मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों के खिलाफ जो शिकायतें आती हैं उनका निपटारा आयोग की बैठक में ही होता है। तब सवाल है कि सरकार को क्या यह प्रक्रिया पारदर्शी नहीं लगती! आखिर क्यों उसे नई व्यवस्था लाने की जरूरत महसूस हो रही है? ऐसा भी नहीं कि सर्वोच्च अदालत से इस बारे में कोई दिशानिर्देश दिया गया हो। सर्वोच्च अदालत ने तो एक बार पूछा भर था कि मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त से संबंधित शिकायतों को निपटाने की प्रक्रिया क्या है। लेकिन सरकार ने इसकी आड़ में ऐसा कदम उठाया है जो सीधे तौर पर इस संस्था को कमजोर करने के संकेत देता है। पिछले कुछ समय में जिस तरह की जानकारियां और सूचनाएं आयोग से मांगी से गई हैं और आयोग ने इन सूचनाओं को मुहैया कराने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के तहत काम किया, उससे लगता है कहीं न कहीं सरकार घबराई हुई है। आइटीआइ के तहत सरकार के मंत्रियों, अफसरों और महत्त्वपूर्ण योजनाओं के बारे में जानकारियां मांगने वाले आरटीआइ कार्यकर्ताओं की सजगता और सक्रियता की वजह से सरकार को कई बार असहज स्थितियों का सामना करना पड़ा है।

दरअसल, पिछले साल केंद्रीय सूचना आयोग ने एक अधिकारी की अपील पर फैसला सुनाते हुए पीएमओ यानी प्रधानमंत्री कार्यालय को निर्देश दिया था कि 2014 से 2017 के बीच केंद्रीय मंत्रियों के खिलाफ भ्रष्टाचार की जो शिकायतें आई हैं उनका खुलासा किया जाए। पीएमओ को कालेधन से संबंधित मांगी गई जानकारी भी देने कहा गया था। लेकिन पीएमओ ने जवाब में यह कह दिया कि जो जानकारियां मांगी गई हैं, वे सूचना की परिभाषा के दायरे में नहीं आती हैं। लेकिन इस जवाब को मुख्य सूचना आयुक्त ने खारिज कर दिया। आरटीआइ ही एक ऐसा हथियार है जो आम लोगों का सशक्तिकरण और सरकार के कामकाज पर निगरानी को सुनिश्चित करता है और सरकार को जवाबदेह बनाता है। पिछले कुछ सालों में सीबीआइ, रिजर्व बैंक जैसी प्रमुख संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र में सरकार के बढ़ते दखल के जैसे मामले सामने आए हैं, उसी की अगली कड़ी सीआइसी के रूप में सामने आ रही है। अगर सीआइसी जैसी संस्था कमजोर हुई तो सरकार की पारदर्शिता और जवाबदेही का क्या होगा!

जानलेवा धागे

इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि किसी का मनोरंजन या खेल दूसरों की जान लेने वाला साबित होने लगे। पिछले कुछ सालों के दौरान पतंग के मांझे वाले धागे की वजह से लोगों की जान जाने की कई घटनाएं सामने आ चुकी हैं। इस मसले पर काफी चिंता भी जताई गई और इसके लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ कार्रवाई की बात भी कही गई। लेकिन आज भी हालत यह है कि इस तरह के जानलेवा धागों की खुले बाजार में बिक्री में कोई कमी नहीं आई है। प्रशासन की ओर से बरती गई इस लापरवाही और आम लोगों की गैरजिम्मेदारी की कीमत एक बार फिर एक युवक को अपनी जान गंवा कर चुकानी पड़ी। मंगलवार को राजधानी दिल्ली के तिमारपुर इलाके में अठारह साल का युवक मोटरसाइकिल से कुछ सामान लाने निकला था, लेकिन बीच में एक कटी पतंग का धागा उसके गले में उलझ गया। तीखे मांझे से लैस धागे से उसकी गर्दन काफी गहराई तक कट गई और ज्यादा खून बहने से आखिरकार उसे नहीं बचाया जा सका। कोई खेल खेलना या मनोरंजन किसी का हक हो सकता है। लेकिन अगर वह किसी दूसरे और उस खेल से अनजान व्यक्ति के लिए जानलेवा बनता है तो इसे किस आधार पर सही ठहराया जा सकता है?

यह किसी से छिपा नहीं है कि बाजार में सरेआम पतंग उड़ाने के लिए जो धागे बिकते हैं, उन पर सीसे के बुरादे से तैयार मांझा चढ़ा होता है। पतंग कटने के बाद धागा समेटने या फिर पतंग के साथ काफी निचले स्तर से गुजरता धागा आमतौर पर दिखाई नहीं देता। यह अगर एक झटके से व्यक्ति के शरीर से गुजर भर जाए तो गहरा घाव हो सकता है। खासतौर पर मोटरसाइकिल की सवारी करने वाले लोगों की नजर चूंकि सड़क पर होती है, इसलिए धागे को देख पाना उनके लिए आमतौर पर मुश्किल होता है और कई बार वे उस जानलेवा धागे की चपेट में आ जाते हैं। यह कहा जाता है कि ये धागे चीन से भारतीय बाजारों में आ रहे हैं। हो सकता है कि यह तथ्य हो। लेकिन इसके अलावा भी पतंग के शौकीन लोग स्थानीय स्तर पर नायलॉन के धागों पर कांच का चूरा, खतरनाक अधेसिव, एल्युमीनियम ऑक्साइड, जिरकोनिया ऑक्साइड और मैदा जैसी चीजों से तैयार लेप चढ़ा कर उसे मारक बना देते हैं, ताकि दूसरों की पतंग आसानी से काटी जा सकें। लेकिन सच यह है कि आज ये धागे कुछ लोगों के लिए पतंग काटने या इसके जरिए मनोरंजन करने का जरिया हैं तो इससे किसी का गला भी कट जा रहा है।

दिल्ली में मांझे वाले धागे की वजह से युवक की मौत की ताजा घटना इस तरह का कोई नया मामला नहीं है। इसके चलते कई बच्चों और लोगों के मरने की खबरें आ चुकी हैं। कुछ खास मौकों पर खतरनाक मांझे से लैस धागों के जरिए की जाने वाली पतंगबाजी की वजह से बड़ी तादाद में पक्षियों की मौत या फिर घायल होने के मामले भी सामने आते हैं। मगर अफसोस की बात यह है कि पिछले कुछ सालों से तीखे मांझे वाले धागे की वजह से हुई कई मौतों और इस मसले पर दिल्ली हाईकोर्ट के स्पष्ट निर्देश के बावजूद न तो सरकार या प्रशासन को इस दिशा में ठोस पहलकदमी की जरूरत महसूस हुई है, न लोगों के बीच इस मसले पर संवेदनशीलता का विकास हुआ कि उनके खेल की वजह से अगर किसी जान जा सकती है, तो वे उसके बारे में एक बार ठहर कर सोचें।

कल्पमेधा

लोकनिंदा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है। अगर वह कर्तव्य मार्ग में बाधक हो तो उससे डरना कायरता है।

-प्रेमचंद

रोशनी में छिपा बिजली संकट

अभिषेक कुमार सिंह

बिजली की सामान्य खपत के अलावा उसकी फिजूलखर्ची भी बड़ा मुद्दा है। शहरों और महानगरों में रोशनी में नहाते शॉपिंग मॉल बिजली फूंकने में किसी से कम नहीं हैं। इनमें खर्च होने वाली बिजली की देश के छोटे शहरों, कस्बों, गांवों, खेतों व कारखानों को ज्यादा जरूरत है, जहां बिजली कटौती एक अनवरत समस्या है।

शहरों को सबसे ज्यादा जिन बातों के लिए जाना जाता है उनमें बुनियादी ढांचे, दौड़ता-भागता जीवन, रोजगार के तमाम अवसर और बेइंतहा चमक-दमक है। खासतौर पर चमक-दमक की बात करें तो मेट्रो, सड़कों, पुलों के निर्माण से लेकर दिन-रात चमचमाते दर्जनों शॉपिंग मॉल की बदौलत यह विकास सभी की आंखों में जुगनुओं की तरह टिमटिमाता रहता है। चकाचौंध करने वाला यह विकास हमारी आंखों में सपने जगाता है और हर साल लाखों लोगों को उनके गांव-कस्बों से उखाड़ कर शहरों की ओर खींच लाता है। पर सवाल है कि अनगिनत ख्वाब जगाने वाले हमारे ये शहर आखिर किस कीमत पर इस तरह की रौनक पेश कर रहे हैं। इसका जवाब है- बिजली की अंधाधुंध खपत।

अगर सिर्फ दिल्ली जैसे महानगर की बात करें तो यहां चलने वाली मेट्रो, दिन-रात चमकने वाले शॉपिंग मॉल्स, सड़कों और गलियों में लगीं स्ट्रीट लाइटें, आइपीएल जैसे आयोजनों में एक ही रात में कई मेगावाट बिजली फूंकने के इंतजाम कुल मिला कर यह दृश्य पैदा कर रहे हैं कि एक शहर ही एक बड़े बिजलीघर की सारी बिजली खा जा रहा है। दिल्ली का उदाहरण इसलिए सामयिक और प्रासंगिक है कि बिजली आपूर्ति करने वाली कंपनियों के समूह (डिस्कॉम्स) ने हाल में एक आकलन पेश किया है, जिसके मुताबिक इस वर्ष 2019 की गर्मियों में दिल्ली में बिजली की प्रतिदिन की खपत सात हजार चार सौ मेगावाट पहुंच सकती है जो अपने आप में एक रिकॉर्ड होगी। वर्ष 2002 में उच्च मांग वाले दिन में यह मांग अधिकतम 2879 मेगावाट पहुंची थी, उसे देखते हुए लग रहा है कि सत्रह साल के अरसे में इस शहर की बिजली की मांग में करीब ढाई सौ फीसद इजाफा हो चुका है। बिजली की मांग का यह रेकार्ड टूटना बहुत मुमकिन है क्योंकि पिछले साल यानी 2018 के जुलाई में यह सात हजार मेगावाट का आंकड़ा पार कर चुकी है।

इससे पहले आठ जून, 2018 को जब दिल्ली में बिजली की मांग सर्वोच्च स्तर यानी छह हजार नौ सौ चौंतीस मेगावाट पर पहुंची थी, तब कहा गया था कि जल्द ही यहां बिजली की खपत या मांग के कई रिकॉर्ड टूट सकते हैं। यह अंदाजा गलत साबित नहीं हुआ और इस बार भी डिस्कॉम के आकलन के मुताबिक यह मांग प्रतिदिन करीब साढ़े सात हजार मेगावाट तक हो सकती है। विचारणीय पहलू यह है कि हमारे देश में अब ऐसे कई शहर हैं जो अकेले दम पर टिहरी जैसी विशाल विद्युत परियोजना की सारी बिजली फूंक सकते हैं। टिहरी बांध की प्रतिदिन बिजली सप्लाई की क्षमता दो हजार चार सौ मेगावाट बताई जाती है, जिसका अर्थ है कि सिर्फ दिल्ली को जगमगाता रखने के लिए टिहरी जैसे तीन बांधों की जरूरत है।

यह तो स्वाभाविक है कि विकास होगा तो ऊर्जा की खपत भी बढ़ेगी। लेकिन सवाल है कि आखिर दिल्ली, मुंबई, कोलकाता जैसे शहरों में बिजली की मांग में इतनी तेजी से बढ़ोतरी क्यों हो रही है और किन उपायों से बिजली के बेतहाशा खर्च पर काबू पाया जा सकता है या उसकी भरपाई अन्य तौर-तरीकों से हो सकती है। असल में, पश्चिमी आधुनिकता के अंधानुकरण के साथ विकास का जो एक सपना पिछले एक-डेढ़ दशक से हमारे देश में जोरशोर से देखा जा रहा है, वह यह है कि हम जल्द ही कुछ ऐसा करें कि न्यूयार्क, शंघाई और टोक्यो जैसे महानगरों को मात दें और दुनिया को दिखाएं कि आधुनिकता में हमारा कोई सानी नहीं है। विकास की इस होड़ का नतीजा है शहरों में कम जगह में ऊंची इमारतों का अधिक संख्या में बनना और उन्हें ठंडा, साफ-सुथरा व रोशन रखने के लिए बिजली का अंधाधुंध इस्तेमाल करना।

शहरीकरण जो समस्याएं पैदा कर रहा है, उसका एक संदर्भ विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और यूएन-हैबिटेट की साझा रिपोर्ट से मिला था। इसमें बताया गया था कि एअरकंडीशनर, रेफ्रिजरेटर व वॉटर कूलर आदि के इस्तेमाल और कारों के प्रयोग की वजह से शहरी इलाकों के औसत तापमान में एक से तीन डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो जाती है। रिपोर्ट में इस बदलाव को 'अर्बन हीट आइलैंड इफेक्ट' की संज्ञा दी गई। कारों से निकलने वाला धुंआ वातावरण में सिर्फ कार्बन डाई-ऑक्साइड नहीं झोंकता है, बल्कि आसपास का तापमान भी बढ़ाता है। इसी तरह फ्रिज, एसी, वॉटर कूलर का इस्तेमाल करने वालों को ठंडी हवा और पानी तो अवश्य मिल जाता है, लेकिन ये उपकरण अपने आसपास के माहौल में बेतहाशा गर्मी झोंकते हैं जो मई-जून जैसे गर्म महीनों में शहरों को और ज्यादा गर्म कर देते हैं।

बिजली की सामान्य खपत के अलावा उसकी फिजूलखर्ची भी बड़ा मुद्दा है। शहरों और महानगरों में रोशनी में नहाते शॉपिंग मॉल बिजली फूंकने में किसी से कम नहीं हैं। इनमें खर्च होने वाली बिजली की देश के छोटे शहरों, कस्बों, गांवों और खेतों व कारखानों को ज्यादा जरूरत है, जहां बिजली कटौती एक अनवरत समस्या है। मॉल में बिजली के इस्तेमाल की तीन प्रमुख वजहें हैं। एक, वहां ज्यादा से ज्यादा लोगों की आमदरफ्त, मॉल खुले रहने की अवधि और उस कारोबार की प्रकृति, जो वहां होता है। शॉपिंग मॉल किसी आम इमारत के मुकाबले कितनी अधिक बिजली खाते हैं, इसे लेकर अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण संस्था- ग्रीनपीस ने 2013 में चीन में एक तुलनात्मक अध्ययन किया था। इसमें दो सौ छत्तीस व्यावसायिक इमारतों में बिजली की खपत की तुलना की गई और पाया कि एक औसत शॉपिंग मॉल में बिजली की खपत प्रति घंटे छह सौ अट्ठावन किलोवॉट प्रति वर्गमीटर के दायरे में होती है। यह खपत चीन के ताई-कोकत्सुई नामक शहर में स्थित ओलंपियन सिटी वन में इस्तेमाल होने वाली बिजली के मुकाबले तेरह गुना अधिक थी। छोटी-मोटी दुकानों और घरों से तुलना करने पर तो शॉपिंग मॉल में बिजली की खपत सैकड़ों से हजारों गुना अधिक पाई गई। औसत यह है कि तीन सौ मेगावाट बिजली उत्पादन करने वाले प्लांट की सारी बिजली एक बड़े शॉपिंग मॉल में ही खर्च हो जाती है। कोई संदेह नहीं कि शॉपिंग मॉल के कारण बिजली खपत का ऐसा ही असंतुलन अपने देश में भी पैदा हो चुका है। शहरी-नियोजन से जुड़े मशहूर विचारक लियॉन क्रेअर ने कहा था कि एक दिन दुनिया में ऐसा आएगा, जब न तो बिजली पैदा करने के लिए हमारे पास यूरेनियम और कोयला होगा और न वाहनों के लिए तेल, तब ऐसे में शहरी इलाकों की लिफ्टें बंद हो जाएंगी।

इन सारी दिक्कतों का हल नीतियों में बदलाव और एक इंसान की आम सहनशक्ति में छिपा है, जिसका दर्शन शहरों में जरा कम ही होता है। थोड़ी गर्मी बर्दाश्त कर लेना, एसी की जगह कूलर से काम चला लेना, फ्रिज या वॉटर कूलर की बजाय घड़े-सुराही की शरण में जाना पिछड़ेपन की निशानी नहीं है, बल्कि इससे हम खुद को अपने आसपास के वातावरण का ख्याल रखने वाले आधुनिक सोच का इंसान साबित कर सकते हैं। नीतियों में बदलाव के कुछ उदाहरण कनाडा, अमेरिका और फ्रांस जैसे देशों ने पेश किए हैं। टोरंटो दुनिया का पहला शहर है जिसने एक खास ऊंचाई वाली सभी इमारतों में हरित छतों (ग्रीन रूफ) का निर्माण अनिवार्य कर दिया है। लॉस एंजिलिस में सभी इमारतों की छतों की हल्के रंगों में पुताई-रंगाई जरूरी कर दी है, जिससे वे गर्मी न सोखें। पेरिस ने एक कानून पारित कर हरित छतों के साथ-साथ इमारतों की छतों पर सोलर पैनल लगाना अनिवार्य कर दिया है। ये सबक भारत के शहरों को भी लेने चाहिए, ताकि तेजी से होता शहरीकरण अपने साथ-साथ वैसी बर्बादी न लाए जिसे वक्त रहते रोका जा सकता था।

दिखावे का रोग

विनय मोधे

दुनिया मेरे आगे

आजकल यातायात और पार्किंग की समस्या हर शहर में आम हो चुकी है। इसके पीछे सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है वाहनों की बढ़ती संख्या। इससे आगे बढ़ कर देखें तो वाहनों की संख्या का मूल कारण है दिखावे की मानसिकता। हर व्यक्ति चाहता है कि उसके पास कार हो, भले ही उस व्यक्ति के लिए उसकी उतनी उपयोगिता न हो। लेकिन अगर उसके दोस्त या रिश्तेदारों के पास कार है तो उसके पास भी होनी ही चाहिए। मेरे एक मित्र हैं। मेरा मानना है कि उन्होंने भी सिर्फ दिखावे के लिए सबसे नए मॉडल की कार खरीदी है, जिसे वे कभी-कभार चलाते हैं।

हालांकि हर किसी के लिए कार खरीदना इतना आसान भी नहीं है कि केवल दिखावे के लिए कोई अपनी लाखों की जमा पूंजी खर्च कर दे। मगर बैंक और फाइनेंस कंपनियों ने कार खरीदना सुलभ कर दिया है कि जिन्हें आवश्यकता नहीं है या जिनके पास महंगी कार खरीदने के लिए पर्याप्त धन नहीं है, वे भी दिखावे के लिए ही सही, कार खरीद लेते हैं। इसके बाद जब वे कर्ज की किस्तें नहीं चुका पाते, तब वित्तीय संस्था द्वारा ऐसी कारें जब्त कर बेच दी जाती हैं, जिसे फिर कोई व्यक्ति दिखावे के चक्कर में खरीद लेता है।

शायद लोगों की इसी भूख को देखते हुए आजकल अक्सर नए-नए मॉडल की कारें बाजार में आ रही हैं। जाहिर है, दिखावे का जोर यहां भी हावी है। बिल्कुल नए मॉडल की कार खरीदने के चक्कर में लोग पहले पुरानी कार को बेचने का जुगाड़ करते हैं। कई बार पुरानी कार की कीमत बहुत कम रखी जाती है। ऐसे में कोई न कोई ग्राहक मिल ही जाता है जो फिर इसे सड़क पर ले आता है। जो लोग किसी भी तरह नई कार खरीदने का दिखावे का शौक पूरा नहीं कर पाते, वे ऐसी पुरानी कारों को खरीद कर अपना शौक पूरा करते हैं। कहने का आशय यह है कि जरूरत हो या नहीं हो, नई हो या पुरानी, कुछ लोगों के लिए कार दिखाना जरूरी है।

आजकल त्योहारों पर नई कार लेने का नया चलन है। त्योहार के दिन किसी वाहन के शोरूम में वाहन खरीदने वालों की भीड़ देख कर लगेगा कि शायद वाहन मुफ्त में बांटे जा रहे हैं। इन तमाम ग्राहकों में बहुतायत में ऐसे होते हैं जो सिर्फ दिखावे के चक्कर में वाहन खरीद रहे होते हैं। त्योहार कोई भी हो, उसकी खुशियां तब तक पूरी नहीं मानी जातीं, जब तक नई कार घर के सामने न खड़ी हो। अब तो यह भी देखा जाता है कि एक ही परिवार में दो-तीन कारें होती हैं। परिवार के कुल जमा तीन सदस्यों के लिए तीन अलग-अलग कारें। कोई सदस्य एक दूसरे की कार का उपयोग नहीं करता, भले ही घर में धूल खाती पड़ी रहे।

मेरे एक मित्र हैं। उनके बेटे ने अपने जन्म दिन पर पहले तो अपने लिए मोटरसाइकिल की फरमाइश की, पर जब उसके मित्र ने अपने जन्मदिन पर कार खरीदी तो वह भी बाइक की जगह कार लेने की जिद पर अड़ गया जो उसके पिता ने पूरी की। दरअसल, दुपहिया और सार्वजानिक वाहनों का उपयोग करने वालों को आजकल हेय दृष्टि से देखा जाता है। कई लोग ऐसी हेय दृष्टि से बचने के लिए भी कार खरीदने का दुस्साहस कर बैठते हैं। इनमें से कई बाद में पछताते भी हैं। दुपहिया वाहन या सार्वजनिक वाहनों का प्रयोग करने में कोई हीन भाव नहीं होना चाहिए, बल्कि यातायात और पार्किंग की समस्या से बचने के लिए इसे बढ़ावा मिलना चाहिए। पर हमारे समाज में दिखावे का ज्यादा महत्त्व है, इसीलिए लोग यह कहने में शर्म महसूस करते हैं कि उनके पास कार नहीं है।

मेरे कहने का यह मतलब कतई नहीं है कि कार खरीदी ही न जाए। मेरा खयाल है कि कार तब खरीदी जाए जब उसकी वास्तव में उपयोगिता हो। आप या आपके परिवार का कोई सदस्य उसे चलाने वाला हो। अधिक दूरी तक आने-जाने के लिए उसका उपयोग होने वाला हो। हमेशा चलाए जाने वाले मार्ग पर यातायात जाम जैसी समस्या न हो। घर और अन्य जगहों पर पार्किंग के लिए पर्याप्त जगह हो। कई बार यह देखा जाता है कि लोग कार तो खरीद लेते हैं, लेकिन पार्किंग सड़क के किनारे करते हैं, क्योंकि घर में पर्याप्त जगह नहीं होती।

अब समय आ गया है कि हम वाहन खरीदते समय इस बात का ध्यान रखें कि कहीं हमारा वाहन हमारे शहर की यातायात समस्या को और बढ़ा तो नहीं देगा! कहीं हमारे वाहन से पार्किंग की समस्या में इजाफा तो नहीं होगा! क्या यह वाहन सचमुच में हमारी आवश्यकता है या कि सिर्फ दिखावे या किसी से बराबरी करने के लिए हम इसे खरीद रहे हैं! इस मामले में हम खुद अपनी समस्या का समाधान कर सकते हैं।

चौपाल

छवि को क्षति

यह सर्वविदित है कि खुशहाली किसी भी इंसान के जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि खुशियों के बिना जिंदगी अधूरी कही जाती है। मगर हम भारतीय कितने खुश हैं? हाल ही में जारी वैश्विक प्रसन्नता सूचकांक-2019 की 156 देशों की सूची में भारत को 140 वां स्थान मिला है और यह पिछले वर्ष की तुलना में सात पायदान नीचे है। यही नहीं, हमारी उदासी का आलम यह है कि अपने पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान से भी इस मामले में हम काफी पीछे हैं। इस सूची में पाकिस्तान अपनी रैंकिंग में पिछले साल से सुधार करते हुए 75 वें स्थान से 67 वें पर आ गया है। यहां विचारणीय है कि स्वास्थ्य, जीवन प्रत्याशा, आजादी और भ्रष्टाचार की समाप्ति जैसे छह पैमानों को ध्यान में रख कर तैयार की जाने वाली इस सूची में हम लगातार पिछड़ क्यों रहे हैं?

कहीं हम राजनीतिक और सांप्रदायिक द्वेष में सुलग कर उग्र तो नहीं होते जा रहे हैं! यह सवाल इसलिए कि जिस तरह से पिछले कुछ वर्षों में भीड़ द्वारा किसी व्यक्ति की हत्या, सांप्रदायिक झड़पें या तो बढ़ी हैं या ज्यादा प्रकाश में लाई गई हैं उससे देश की छवि को क्षति तो जरूर पहुंची है। जब ऐसे ही मुद्दे वैश्विक पटल पर अपनी जगह बनाते हैं तो हमें एक बेचैन और बदहवास राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा कर दिया जाता है क्योंकि छोटी-सी बुराई भी तमाम अच्छाइयों पर परदा डाल देती है। हमारे अंदर निम्न स्तर का आपसी राजनीतिक प्रतिशोध, क्रोध और उग्रता जरूरत से ज्यादा घर कर गए हैं जिन्हें निकाल फेंकने की जरूरत है।

अब जबकि आम चुनाव सामने है और लोगों की खुशहाली किसी भी राजनीतिक पार्टी के एजेंडे में दूर-दूर तक नहीं है, 130 करोड़ आबादी वाले इस देश को यहां की फिजाओं में खुशियां घोलने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेकर कम से कम भारत को एक खुशहाल राष्ट्र का दर्जा तो दिलाना ही चाहिए।

● *संजय दूबे, नई दिल्ली*

इंसानियत से दूर

आज मनुष्य आधुनिक होने के साथ-साथ असंवेदनशील भी होता जा रहा है। आएदिन अखबार या टीवी की खबरें देखने को मिलती हैं कि दुर्घटना के बाद पीड़ित बचाव की गुहार लगाता रहा लेकिन लोग केवल मूकदर्शक बने रहे। जिस समय पीड़ित को प्राथमिक उपचार और अस्पताल ले जाने की आवश्यकता होती है उस समय लोग उसका वीडियो बनाने में मशगूल हो जाते हैं। क्या यही है मानवता? क्या यही हमारी संस्कृति और विकास है? हम चाहे कितने ही आधुनिक या विकसित हो जाएं, हमारे अंदर मानवता का जीवित रहना बहुत जरूरी है।

● *श्रीनिवास पंवार बिश्नोई, दिल्ली विश्वविद्यालय*

ताक पर कानून

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा की खाप पंचायतें अपने अन्यायपूर्ण फैसलों के लिए कुख्यात हैं। यहां किसी परिवार, गांव, गोत्र के सम्मान से जुड़ा मामला बता कर कई बेगुनाहों को जघन्य सजाएं दी गई हैं। देश के कानून से इनका कोई संबंध नहीं है। ये अपने अनुसार कानून बनाती और सामूहिक सजा का ऐलान करती हैं। इनके रूढ़िवादी विचारों और तानाशाही सोच से प्रेरित होकर देश के दूसरे इलाकों में भी लोग 'ऑनर किलिंग' जैसे अपराध करते हैं। महाराष्ट्र में एक लड़की के पिता ने ही उसकी हत्या कर दी क्योंकि वह पिता के मना करने के बावजूद एक लड़के के साथ कॉलेज जाती थी। यह देश का दुर्भाग्य है कि इक्कीसवीं सदी में भी कुछ लोग संस्कृति और परंपरा के नाम पर गंभीर अपराध करने से नहीं चूकते हैं।

● *चंद्रकांत, एएमयू, अलीगढ़*

सुधार की दरकार

आज समूचा विश्व संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में बदलाव की जरूरत महसूस कर रहा है और यह वाजिब भी है कि इसमें कुछ सुधार किए जाएं। कई वर्षों से इसके पांच सदस्य स्थायी रूप से विद्यमान हैं जिसके कारण उनमें जड़ता आ चुकी है। उनमें से कुछ राष्ट्र वीटो का उपयोग अपने ही हितों की पूर्ति के लिए करते आ रहे हैं। वीटो शक्ति का उपयोग आतंकियों को शरण देने वाले देशों की सुरक्षा में भी किया जाता रहा है। क्या विश्व के हितों की रक्षा न करते हुए, अपने हितों की रक्षा में वीटो का उपयोग करते रहना स्वीकार्य है? इसके कारण अन्य देशों को आतंकी वारदातों का दंश झेलना पड़ रहा है।

चीन लगातार अपने वीटो का गलत उपयोग करता रहा है। क्या वीटो शक्ति चीन को तानाशाह नहीं बना रही है? क्या उसकी स्थायी सदस्यता बनी रहनी चाहिए? चीन ने अपने वीटो का उपयोग जैश-ए मोहम्मद के सरगना के बचाव में लगातार किया है जो भारत सहित सभी शांतिप्रिय देशों के लिए नासूर बना हुआ है। विश्व शांति को बनाए रखने के लिए चीन को चाहिए कि अपनी वीटो शक्ति का गलत उपयोग न करे। भारत आज विश्व में जल, थल और नभ के साथ-साथ अंतरिक्ष में भी अपनी शक्ति प्रदर्शित कर चुका है। क्या ऐसे में भारत को भी सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य नहीं बनाया जाना चाहिए?

● *लालजी जायसवाल, सिंगरौली, मध्यप्रदेश*

इनकी उपेक्षा

कांग्रेस ने लोकसभा चुनाव के लिए अपना घोषणापत्र जारी कर दिया है। हैरानी की बात है कि इसमें उसने देश भर में पढ़ने वाले कश्मीरी छात्रों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का वायदा तो किया है, लेकिन तीन दशकों से विस्थापित कश्मीरी पंडितों पर एक शब्द नहीं कहा है। कश्मीरी पंडित यह कैसे भूल सकते हैं कि कुछेक महीने पूर्व ही कांग्रेस अध्यक्ष ने राजस्थान के पुष्कर सरोवर में पूजा-अर्चना के दौरान अपने परिवार के गोत्र का खुलासा करते हुए खुद को दत्तात्रेय कौल ब्राह्मण बताया था और कहा था कि उनके पूर्वज कश्मीरी पंडित परिवार से ताल्लुक रखते हैं। अपने परिजनों की हित-चिंता को ध्यान में रखते हुए घोषणापत्र में यदि विस्थापित पंडितों के पुनर्वास की भी चर्चा की गई होती तो कितना अच्छा होता! इससे उनके घावों पर थोड़ा मलहम तो लगता। छितराए कश्मीरी पंडित 'वोट-बैंक' नहीं हैं, शायद इसीलिए घोषणापत्र में इस बात को तरजीह नहीं दी गई। इसके उलट घाटी में रह रहे बहुसंख्यकों की तुष्टि के लिए घोषणापत्र में हर संभव प्रयास किए गए हैं।

बातचीत से कश्मीर-समस्या का हल खोजा जाएगा, यह बात घोषणापत्र में जरूर कही गई है मगर सवाल है कि बातचीत से इस समस्या का हल निकलना होता तो कब का निकल गया होता। पहले भी तो प्रदेश में कांग्रेस समर्थित साझा सरकारें रही हैं।

● *शिबन कृष्ण रैणा, अलवर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली